# प्रशासनिक सुधार

प्रशासनिक सुधार का संबंध अनिवार्य रूप से प्रशासनिक परिवर्तन से है। इस सुधार को परिवर्तन के सचेत प्रयासों द्वारा प्राप्त किया जाता है। पहले प्रशासनिक सुधार की प्रकृति को स्पष्ट करना पड़ेगा। दूसरे, सुधारात्मक प्रयासों को उस वातावरण के साथ संबद्ध करना पड़ेगा जो या तो सुधार की मांग को जन्म देता है अथवा इस मांग को दबाता है। तीसरे, सुधार की रणनीति स्थिति विशेष के अनुसार बदलती रहती है तथा उसका उद्देश्य विभिन्न प्रकार की प्रशासनिक समस्याओं को सुलझाना होता है। इसलिए विभिन्न प्रकार के सुधारों की पहचान करनी पड़ेगी तथा सुधार– प्रक्रिया की व्याख्या की जरूरत होगी। चौथे, संस्तुति से ज्यादा समस्या शायद उसके क्रियान्वयन करने के मामले से संबद्ध मुद्दों पर ज्यादा ध्यान देने की होगी।

## सुधार का अर्थ

प्रशासन निरन्तर व्यावसायिक रूप में क्रियाशील रहता है और स्थितियां कभी भी स्थिर नहीं रहती। बदलती हुई स्थितियों के अनुसार प्रशासन को भी अपना अस्तित्व कायम रखने के लिए परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। पुनः संगठन के चार लक्ष्यों की पहचान मोशर ने इस रूप में की है – नीति और कार्यक्रमों को बदलना, प्रशासनिक सक्षमता को बढ़ाना, वैयक्तिक समस्याओं का समाधान करना तथा बाहरी संगठनों से पड़ने वाले दबावों और आने वाली चेतावनियों का मुकाबला करना। इनमें से एक, सांगठनिक सक्षमता को बढ़ाना, सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण लक्ष्य है।[1] पॉल एपलबी (Paul Appleby) ने अमरीका के प्रथम हूबर आयोग रिपोर्ट के ऊपर लिखे गए अपने लेख में दो मूलभूत प्रकार के प्रशासनिक परिवर्तन का जिक्र किया है – निरन्तर जारी रहने वाले परिवर्तन तथा कभी–कभी किए जाने वाले परिवर्तन।[2] बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार स्वतःस्फूर्त ढंग से, सामंजस्य बैठाने की गरज से होनेवाले वर्धनशील परिवर्तनों का संबंध पहले प्रकार के परिवर्तन से है। नयी फाइलिंग प्रणाली, काम की क्रियाविधि में बदलाव, नियुक्ति में फेर–बदल इसके उदाहरण हैं। एपलबी ने कभी–कभार किए जाने वाले परिवर्तनों को 'पुनस्संगठनीकरण' के नाम से पुकारा है। यह अपने क्षेत्र तथा अंतर्वस्तु के लिहाज से अत्यन्त व्यापक होता है तथा शासन में इससे भारी पैमाने पर बदलाव आ जाता है। लगभग पूरा ढांचा ही इससे प्रभावित होता है।

को आगे बढ़ाने की इन्हीं के हाथ में होता है तथा ये ही उसे आगे बढ़ाते भी हैं। संस्थानिक नौकरशाही में सुधार करना मात्र प्रबंधकीय मामला नहीं है बल्कि राजनीतिक मुद्दा है। "जो संस्थानिक नौकरशाही के सुधार की कुंजी है.... उसे अपनाने का मतलब होगा इस संस्था की वैधता पर प्रश्न उठाना, इस प्रक्रिया में इसकी स्वायत्तता तथा स्व–निर्देशन पर सवाल खड़े करना और इसके तहत इस नौकरशाही के व्यवहारों एवं मूल्यों को जनता के निरीक्षण एवं अवलोकन में सीधे–सीधे छोड़ना।"

संस्थानिक नौकरशाही की स्वायत्तता तथा ताकत को कम करने के लिए राजनीतिक कर्तव्य की वरीयता को अंगीकार करना, नौकरशाहीमूलक कार्यसंचालन का स्वतंत्र लेखा–निरीक्षण तथा नागरिकों का एक नजदीकी सर्वेक्षण अनिवार्य है। जिस सीमा तक शासन की गोपनीयता कम की जाएगी, और शासन के खुलेपन को बढ़ावा दिया जाएगा उसी सीमा तक संस्थानिक नौकरशाही कमजोर होगी और धीरे–धीरे 'यह उपकरणात्मक भूमिका' (Instrumental role) अख्तियार करने लगेगी। जब तक औपनिवेशिक नौकरशाही की संस्कृति हावी रहेगी और शीर्षस्थ नौकरशाही राजनीतिक पदों को घेरे रहेगी तब तक वास्तविक सुधारों को प्रस्तावित करना और उन्हें कामयाब करना मुश्किल होगा। सुधार की एक अनिवार्य पूर्व शर्त यह भी है कि किसी भी कीमत पर शीर्षस्थ नौकरशाही को इसके साथ–साथ लेकर चला जाय।

## सुधार के प्रकार

सुधार प्रस्तावों के क्षेत्र और प्रभाव अलग–अलग होते हैं। इनका महत्व इस बात पर निर्भर करता है कि प्रशासन के किस पहलू को परिवर्तन का विषय बनाया जा रहा है। सुधार के कुछ प्रस्ताव जनता और प्रेस दोनों का ध्यान आकर्षित कर सकते हैं। बहुत से अन्य प्रस्ताव ऐसे भी होते हैं जिनकी जनता और प्रेस में कोई चर्चा नहीं होती। सुधार प्रस्तावों को अलग–अलग श्रेणियों में विभक्त करने का एक तरीका यह है कि इनपर उस सीमा तक ध्यान दिया जाय जिस सीमा तक वे प्रशासनिक क्षेत्र को प्रभावित करते हैं। कोई सुधार–प्रस्ताव ऐसा भी हो सकता है जो पूरे प्रशासन के लिए दूरगामी परिणाम पैदा करने वाला सिद्ध हो अथवा प्रशासन का एक बड़ा भाग इससे परिवर्तित हो जाय। हो सकता है पूरे प्रशासन–तंत्र के लिए यह महत्वपूर्ण साबित हो। इसके विपरीत कोई प्रस्ताव ऐसा भी हो सकता है जो किसी एक पक्ष–विशेष के लिए निर्देशित होता है अथवा कोई एक विभाग ही उसके परिवर्तन का लक्ष्य होता है। अतः ऐसे प्रस्तावों का दायरा संकुचित हो जाता है। हर मंत्रालय में सतर्कता संकाय स्थापित करना अथवा 1964 में केन्द्र में प्रशासनिक सुधार विभाग बनाया जाना पहली श्रेणी के सुधार हैं जबकि भारतीय इस्पात प्राधिकार (SAIL) का गठन अथवा भारतीय जीवन बीमा निगम का ज्यादा विकेंद्रित निर्णय–अभिधान के लिए विभाजन उपरोक्त में से दूसरी कोटि के सुधार हैं।

सुधारों को वर्गीकृत करने का दूसरा तरीका है उनकी सुधारात्मक अंतर्वस्तु को आधार बनाना। यदि पहले तरीके में सुधारों के वर्गीकरण का आधार यह था कि प्रशासन का क्षेत्र

किस हद तक सुधारों से प्रभावित हो रहा है तो दूसरे तरीके का आधार यह है कि यह 'क्या' है जो प्रभावित हो रहा है। अगर अंतर्वस्तु की दृष्टि से विचार करें तो हर प्रशासनिक संगठन तीन अंतर्संबद्ध तत्वों से बना होता है– आधारभूत संरचना, प्रक्रिया और व्यवहार। प्रशासनिक सुधारों का लक्ष्य इनमें से कोई एक अथवा तीनों ही तत्व एक साथ होते हैं।

लोकप्रशासन में संरचनात्मक सुधार सबसे ज्यादा पाये जाते हैं। यहां इन सुधारों की मुख्य चिन्ता होती है काम का विभाजन, उनका प्रतिनिधान और विकेंद्रीकरण, स्वायत्त संस्थाओं का गठन तथा अन्योन्याश्रित इकाइयों के कामों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए एक समन्वय–तंत्र की स्थापना करना। अधिकांश सुधार–प्रस्तावों का लक्ष्य ये ही बातें होती हैं। कार्यप्रणाली में सुधार की बात भी अक्सर ही सरकारी संगठनों के लिए सुझायी जाती है तथा लागू भी की जाती है। इसके अंतर्गत वित्तीय नियमों, परिवर्तन, कार्य–विधि में बदलाव (उदाहरणार्थ फाइलिंग की पद्धति में परिवर्तन, फार्म इत्यादि के स्वरूप में परिवर्तन) तथा लालफीताशाही को दूर करने के सामान्य प्रयास किए जाते हैं। केंद्रीय वित्त विभाग की कर्मचारी – निरीक्षण इकाई द्वारा संपादित अधिकांश काम इसी कोटि में आते हैं। अलग–अलग तरह की प्रशासनिक स्थितियों में अनेकानेक प्रबंधकीय तकनीकों का प्रयोग भी इस श्रेणी से संबंधित सुधार है। पी पी बी एस, संचालनगत शोध, प्रणाली–विश्लेषण इत्यादि का उपयोग अब व्यापक पैमाने पर लोकप्रशासन में होने लगा है। नयी प्रौद्योगिकी, मसलन कम्प्यूटर और 'डाटा–प्रोसेसिंग' यंत्रों का उपयोग आजकल बेहतर और सत्वर सरकारी संचालन के लिए होने लगा है। इन तकनीकों को लागू करने का यह मतलब कदापि नहीं है कि इन्हें स्वीकृति भी प्राप्त हो गई है। अनेक सार्वजनिक संगठनों में ये प्रविधियां और ये तंत्र महज दिखावे की चीज है तथा कर्मचारीगण इनको आत्मसात नहीं कर पाये हैं। स्वचालन (Automation) की विशेष समस्याएं अंतर्वैयक्तिक संबंधों तथा भूमिका–विस्थापन के सन्दर्भ में उठ खड़ी होती हैं।

जहां तक सरकारी संगठनों का संबंध है, उनमें आचरणगत सुधार की बात अपेक्षाकृत नयी है। नौकरशाही की आलोचना अक्सर उसके निर्वैयक्तिक चरित्र के कारण की जाती है और इसके मानवों से अलग–थलग जा पड़ने वाले परिणाम भी आलोचना के विषय बनते हैं। नौकरशाही के भीतर अंतर्वैयक्तिक और अन्तर–सामूहिक संबंधों को अच्छा बनाने के लिए व्यवहारगत सुधारों की बात कही जाती है। बहुत सारे परिवर्तनों की वकालत इसलिए भी की जाती है ताकि प्रशासन जनता की सेवा बेहतर ढंग से कर सके। लोकप्रशासन में आजकल प्रतिभागी प्रबंधन और संवेदनशीलता के प्रशिक्षण को बहुत ज्यादा महत्व मिल रहा है। प्रतिभागी प्रबंधन का लक्ष्य है विभिन्न श्रेणियों के कर्मचारियों को भागीदारी का अवसर प्रदान करके एक साझेदारी का वातावरण बनाना। संवेदनशीलता के प्रशिक्षण का संबंध सीधे–सीधे प्रवृत्तिगत बदलाव से है और फिलहाल यह सरकारी प्रशिक्षण–संस्थानों में अत्यन्त लोकप्रिय हो रहा है। इन सबके बावजूद यह

सवाल विवादास्पद है कि व्यक्ति– केंद्रित एवं एक बार में परिणामोन्मुख इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों से व्यवहार में किस सीमा तक परिवर्तन लाया जा सकता है।

सुनियोजित सांगठनिक परिवर्तन लाने के लिए एक तकनीक के रूप में संगठन–विकास को विशेष महत्व दिया जाता है। संगठन–विकास तकनीक (Organisation Development or OD) की शुरूआत मूलतः व्यावसायिक संगठनों में हुई थी। पर अब इस तकनीक को सार्वजनिक संगठनों में भी अपनाया जा रहा है। मूलतः इस तकनीक को निरन्तर जारी रहने वाली शैक्षणिक प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है। इस तकनीक का मुख्य उद्देश्य संगठन के पुनर्नवीकरण के लिए मानवीय संसाधनों का अधिकतम उपयोग है। इस क्रम में यह ढांचे, कार्यप्रणाली अथवा प्रौद्योगिकी के बदले अंतर्वैयक्तिक प्रक्रियाओं पर अधिक बल देता है। संगठन–विकास (ओ. डी.) तकनीक में ज्यादा जोर दल–गठन, संचार तथा साझेदारी से संबद्ध समस्याओं को मिल जुलकर हल करने पर दिया जाता है।

संगठन–विकास कार्यक्रम में अनुप्रयुक्त व्यवहार–विज्ञान (Applied behavioural science) का भी उपयोग किया जाता है। लोकप्रशासन में इसका प्रयोग थोड़ी कठिनाइयां उत्पन्न करता है। गोलेम्बिएव्स्की (Golembiewski) ने बताया है कि सरकारी संगठनों की कुछ खास–खास विशेषताएं होती है जिनमें अनेक प्रभावों के लिए खुलापन, हितों के लिए विविध किस्मों, एक साफ और स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने वाले प्रबंधन–समूह के अभाव तथा संचालनकारी प्रबंधकों एवम् कार्याधिशासियों के बीच कमजोर संबंध–सूत्र का उल्लेख किया जा सकता है। सार्वजनिक संस्थाओं की 'प्रवृत्तिगत पृष्ठभूमि' (Habit background) भी अनूठी होती है। इस सन्दर्भ में, प्रतिनिधान करने में आनाकानी, वैधानिकता, सुरक्षा पर बल, कार्यप्रणाली और सावधानी पर बल तथा पेशेवर प्रबंधन की अवधारणा का कमजोर विकास विशेष उल्लेखनीय हैं। संगठन–विकास के कार्यक्रमों को इन चुनौतियों और बाधाओं का सामना करना पड़ता है।[12]

ऊपर जिन सुधारों की विवेचना विभिन्न प्रकारों के रूप में की गई है उन्हें अक्सर अलग–अलग करके देखा जाता है। संरचनात्मक सुधार व्यवहारगत अनुप्रयोगों की अनदेखी कर सकते हैं तथा कार्यप्रणालीमूलक परिवर्तनों की रूपरेखा प्रस्तुत करने के क्रम में अक्सर संपूर्ण संगठन के लिए इसके अधिक व्यापक अभिप्रायों की उपेक्षा कर दी जाती है। एक समन्वयकारी परिदृश्य की अनुपस्थिति में इस प्रकार सुधारों का पूरा लाभ शायद ही कभी मिल पाता हो।

## सुधार–प्रक्रिया

प्रशासनिक सुधार कोई एक धक्के से हो जाने वाला काम नहीं है। एक प्रगतिशील सरकार जो कार्यसंपादन का एक निश्चित स्तर बनाये रखना चाहती हो उसे समाज के विविध तरह के परिवर्तनों के अनुसार अपने प्रशासनिक तंत्र को ढालना पड़ता है। जब कार्यसंपादन के मानकों का विकास करना हो तो सुधार ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाते हैं। भारत सरकार ने कम से कम अठारह समितियां और आयोग लोकप्रशासन के एक

लिए बैठाया है। प्रशासनिक सुधार आयोग[13] (1966–70) का गठन व्यापक सन्दर्भों में किया गया था और इसके पर्यवेक्षण–क्षेत्र के अन्तर्गत लगभग समूचा भारतीय लोकप्रशासन था। मई 1981 में रेलवे सुधार आयोग का गठन किया गया ताकि आनेवाले दशकों में आवागमन की बढ़ती हुई जरूरतों को मद्देनज़र रखकर यह आयोग रेलवे को क्षमता बढ़ाने के उपाय बता सके। इस समिति का काम मात्र एक संस्था के संगठन और काम से संबद्ध था और समिति मात्र परियोजनात्मक सिफारिशें ही प्रस्तुत कर सकती थी।

इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि चाहे सुधारों का लक्ष्य व्यापक हो अथवा सुधार किसी खंड–विशेष के लिए किए जा रहे हों, परन्तु वे दरअसल सचेत प्रयास के रूप में किए जाते हैं। इनकी शुरूआत किसी खास समय में की जाती है, इनपर विस्तार से चर्चा की जाती है तथा व्यापक तौर पर लागू करने के लिए अति सावधानी से इनको सोच–समझकर प्रस्ताव के रूप में तैयार किया जाता है। इसके बाद सुधार के प्रस्तावों को संबद्ध संस्था द्वारा अंतिम रूप देकर आत्मसात कर लिया जाता है ताकि इसका वास्तविक क्रियान्वयन हो सके। क्रियान्वयन के समय जो कुछ भी किया जा रहा है उसे इस तरह से नियंत्रित–निर्देशित करने की जरूरत होती है कि सुधार प्रस्ताव जीवन की वास्तविक परिस्थितियों के अनुकूल हो सकें और अपना समायोजन कर सकें।

इस दृष्टि से देखा जाय तो प्रशासनिक सुधार की प्रक्रिया को अलग–अलग अवस्थाओं में बांटा जा सकता है। समस्या के निदर्शन और पर्यवेक्षण से लेकर समस्या को हल करने की पूरी प्रक्रिया कई चरणों में बंटी होती है। इस प्रक्रिया के विश्लेषण का एक तरीका हर्बर्ट साइमन द्वारा प्रस्तुत निर्णय–अभिधान के माडल का अनुगमन करना है। साइमन के माडल में अन्वेषण, रूपांकन तथा विकल्प के जो तीन चरण चयन के लिए प्रस्तुत किए गए हैं वे सुधार–प्रक्रिया के लिए आसानी से प्रयुक्त किए जा सकते हैं। अन्वेषण की अवस्था का संबंध प्रशासनिक सुधार की जरूरत के मूल्यांकन से है। रूपांकन के स्तर पर परिवर्तन लाने वाले विविध विकल्पों पर संभावित लाभ और लागत की दृष्टि से विचार किया जाता है। विकल्प चयन की अवस्था का संबंध प्रस्तुत विकल्पों में से किसी एक को व्यावहारिक प्रयोग के लिए चुने जाने से है। केडन ने भी बिल्कुल इसी से मिलता–जुलता माडल प्रस्तुत किया है।[14] यह कुछ ज्यादा व्यापक और विश्लेषणपरक है। केडन के माडल में चार विशेष चरण हैं –

(क) प्रशासनिक परिवर्तन की जरूरत के प्रति जागरूकता;

(ख) लक्ष्यों, उद्देश्यों, कार्यनीति तथा कार्यविधि का अभिकल्पन;

(ग) सुधारों का क्रियान्वयन, तथा

(घ) सुधारक के उद्देश्यों के दृष्टिकोण से सुधारों का मूल्यांकन।

परिवर्तन की जरूरत के प्रति प्रभावकारी जागरूकता उस समय उत्पन्न होती है जब समस्याएं बिलकुल स्पष्ट हो जाती हैं और इनके समाधान के लिए प्रस्ताव उस स्थिति में आने लगते हैं जब प्रशासन–

(i) ग्राहकों द्वारा उठायी जाने वाली मांगों को पूरा करने में अक्षम साबित हो रहा हो।

(ii) भविष्य की उन मांगों का आकलन नहीं कर पा रहा हो जो निश्चय ही घटित होंगी।

(iii) अपनी जारी परियोजनात्मक गतिविधियों के लिए उसके पास प्रभावकारी पद्धतियां न हों।

अक्सर, परिवर्तन की जागरूकता को अनेक कारकों से बाधा पहुंचती है। कुप्रशासन को सहने की क्षमता किसी–किसी समाज में बहुत ज्यादा होती है। हो सकता है शीर्ष–प्रबन्धन यथास्थिति को बहाल रखने में इच्छुक हो। ऐसी स्थिति में सुधार की बातें अनसुनी रह जाती हैं और सुधार का फूल खिलने से पहले ही मुरझा जाता है। यह भी हो सकता है संसाधन से संबंधित बाधाएं हों और संगठन सुधारों के मद में धन–निवेश को तैयार न हो। सुधारों की बात करना वर्तमान स्थिति को बदलने की बात हो जाती है। औपचारिक संगठन व्यक्तियों को आज्ञाकारी भूमिकाओं में सामाजिक बनाना चाहते हैं।

सुधार–प्रस्ताव इस दृष्टि से परंपरा में हस्तक्षेप करते हैं। सुधार की शुरूआत करने वाले लोगों को आलोचनाओं का सामना करना पड़ता है और कभी–कभी तो दण्ड भी भोगना पड़ता है। सुधारक एक तरह से विद्रोही होता है जिसके पास आज्ञापालनवृत्ति के दबावों के बीच खड़े होकर डटे रहने का साहस होता है। वह सामाजिक बहिष्कार और सांगठनिक संत्रास से भयभीत नहीं होता। प्रशासनिक ज्ञान तथा कौशल, राजनैतिक विवेक तथा सुधार के लिए नैतिक प्रतिबद्धता अनिवार्य शर्तें हैं। इस प्रकार, केडन ने ठीक ही कहा है कि 'सुधार तो अल्पसंख्यकों का काम हैं।'

अनिश्चितता की अवस्था में सुधार के प्रस्तावों को आसानी से स्वीकृति मिल जाती है। विघटन तथा विस्थापन के हालात सुधारों को आसानी से स्वीकार करने का वातावरण पैदा करते हैं। परिवर्तन के प्रति विचारधारात्मक प्रतिबद्धता भी प्रशासनिक सुधारों के लिए रास्ता बनाती है। सुधारों के लिए जरूरी है यथास्थिति को बदलकर रख देने वाली सामाजिक–आर्थिक तथा राजनीतिक परिस्थितियां, जैसे सत्ता–परिवर्तन, आर्थिक संकट तेज शहरीकरण, गरीबी तथा बढ़ती हुई अपराध–दर ताकि प्रशासन इन सामान्य स्थितियों से निपटने के लिए परिवर्तन करने पर बाध्य हो।

दूसरा चरण समुचित जांच–पड़ताल तथा उपचार के उपाय को ढूंढ़ निकालने से संबंधित है। एक बार यदि समस्या की पहचान कर ली जाती है (जैसे निम्न उत्पादक दर, कर्मचारियों का ऊंचा कारोबार आदि) तो इसके कारणों की गहरी पड़ताल करनी पड़ती है तथा इसके समाधान के ठोस उपायों का अभिकल्पन करना होता है। 'प्रसंगानुकूल जानकारी तथा रचनात्मक विचार' दोनों ही कारगर उपाय प्रस्तावित करने के लिए जरूरी होते हैं। सुधार के उद्देश्य और लक्ष्य बिल्कुल स्पष्ट होने चाहिए तथा विरोध और शंका के बीच सुधारों को लागू करने की कार्य नीति एवं प्रविधि बिल्कुल तैयार होनी चाहिए।

सुधार के प्रस्ताव वर्धनशील और व्यापक होते हैं। वे या तो अनुकरणात्मक होते हैं अथवा रचनात्मक। सामान्यतः स्वीकार्यता और तीव्र क्रियान्वयन के व्यावहारिक कारणों से स्वतः

उपचयात्मक अथवा वर्धनशील परिवर्तनों की बात कही जाती है। ठीक इसी तरह नया पहल करने से ज्यादा आसान होता है अनुकरण करना। सुधार–प्रस्ताव दूसरे देशों, संगठनों अथवा स्थितियों का हवाला देते हैं जहां कोई विशेष पद्धति कारगर सिद्ध हुई है। यह हवाला सुधार के अपने तर्क को पुष्ट करने के लिए दिया जाता है। नया पहल करने से बहुत सारे सवाल और संदेह उठ खड़े होते हैं।

सुधार प्रस्तावों के अभिकल्पन के अन्तर्गत कुप्रशासन के मूल कारणों की छानबीन करना, व्यवहार में लाये जा सकनेवाले प्रस्ताव तैयार करना, लोगों को इस प्रस्ताव की खूबियों से संतुष्ट करना तथा असफल होने की हालत में बच निकलने के लिए कोई न कोई विकल्प तैयार रखना जैसी बातें शामिल होती हैं। जटिल और लगभग घुमाकर रख देने वाले परिवर्तनों को शंका की दृष्टि से देखा जाता है तथा इनके क्रियान्वयन और स्वीकार्यता में ज्यादा समय लगता है। अक्सर सुधार–प्रस्तावों को आरंभिक चरणों में आलोचनात्मक ढंग से जांचा जाता है ताकि इन प्रस्तावों से संबंधित शंकाएं दूर हो जायें, इनका लक्ष्य सबके सामने स्पष्ट हो जाय और संबंधित शंकाओं का समाधान करके ये प्रस्ताव लोगों का समर्थन पा सकें। सुधारों को व्यापक स्वीकृति तब मिलती है जब–

(i) इन्हें स्थानीय स्थितियों के अनुकूल बनाया गया हो, इसके क्रियान्वयन में वर्तमान संस्थाओं को साधन बनाया गया हो तथा स्थानीय जनता की भागीदारी से ऐसा किया गया हो।

(ii) यदि वर्तमान संस्थाओं की निन्दा नहीं की जा रही हो अर्थात जब सुधरी हुई अवस्था के दोषों ध्यान सुधारों से होने वाले लाभ पर दिया जा रहा हो के बजाय तथा यदि ऐसे सुधार आलोचनात्मक संचालकीय दृष्टि से संपन्न हुए हों।"[15]

सुधारक को अपने समर्थन का दायरा बढ़ाना पड़ता है। सुधारक की रणनीति यह होती है कि "निहित स्वार्थों, विरोधियों तथा तटस्थ रहनेवालों पर विजय प्राप्त करते हुए अपनी स्थिति मजबूत की जाय।" सुधार की प्रस्तावित योजना लंबी अवधि के लिए हो सकती है तथा उसे कई चरणों में लागू किया जा सकता है। सुधार–प्रस्तावों के अंदर एक बनी–बनायी प्रयोगोन्मुखता भी हो सकती है ताकि जब कुछ बातें गलत होने लगें तो योजना को इतना लचीला रखा जा सके कि वह प्रयोगों के अनुसार अपना समायोजन कर ले। सुधारों को जारी रखने के लिए नेतृत्व की जरूरत पर तो खैर चर्चा ही नहीं होनी चाहिए। वह व्यक्ति जो सुधार के प्रस्ताव रख रहा है उसके अनुयायियों की संख्या भी बहुत ज्यादा होनी चाहिए तथा उसे संबद्ध संगठन के अन्दर महत्वपूर्ण पद पर भी होना चाहिए। ये बातें नेतृत्व के गुण के रूप में तथा सामान्य स्वीकृति के साथ मिलकर सुधार–प्रस्तावों को लोकप्रिय बनाते हैं।

### क्रियान्वयन

सुधारों के क्रियान्वयन का विश्लेषण करते हुए केडन ने क्रियान्वयन की चार पद्धतियों की चर्चा की है[16]:

(i) राजनीतिक क्रांतियों के जरिए अध्यारोपित सुधार।

(ii) सांगठनिक जड़ता और रूढ़ियों को खत्म करने के लिए चालू किए गए सुधार।
(iii) वैधानिक रीति से किए गए सुधार।
(iv) प्रवृत्तियों में बदलाव लाकर किए गए सुधार।

प्रशासन राजनीतिक शक्तियों द्वारा प्रभावित होता है और आकार ग्रहण करता है। जब एक राजनैतिक शासन–व्यवस्था की जगह दूसरी राजनैतिक शासन–व्यवस्था सत्ता में आती है तो इसके लोक–प्रशासन की संरचना तथा क्रिया–कलाप प्रभावित होते हैं। सर्वसामान्य जनतांत्रिक शासन के अंतर्गत होने वाले शांतिपूर्ण सत्ता–परिवर्तनों के साथ भी यह होता है। उपनिवेशवाद की जगह संवैधानिक जनतंत्र की स्थापना जैसे क्रांतिकारी परिवर्तन अथवा विद्रोह सत्ताधारी अभिजनों का रूपान्तरण करते हैं क्योंकि इनके कारण सत्ता के शक्ति– आधार बदल जाते हैं।

सामान्य स्थितियों में नौकरशाही को थोड़े प्रशासनिक परिवर्तनों की जरूरत महसूस होती है। इसके अभियानों में जब तनाव और बाधाओं का अनुभव होता है तब ढांचे की अतिशय रूढ़िवादिता तथा नियमों–कानूनों की अत्यधिक दृढ़ता को दूर करने के प्रयास किए जाते हैं। एक सुरक्षा तंत्र के रूप में सुधार की संवेदना स्वयं नौकरशाही के भीतर से ही जग जाती है। परिवर्तन कई रूपों में होते हैं, जैसे वैयक्तिक बदलाव, शोध, प्रोन्नति, संरचनात्मक बदलाव, प्रावधानों का परिवर्तन, नयी पहलों को बढ़ावा देना, बेहतर जनसंपर्क कायम करना, आदि।

वैधानिक प्रणाली के सहारे प्रशासनिक परिवर्तन लाना एक आम प्रघटना है। भूमि सुधार संबंधी नये कानून अथवा स्थानीय शासन के नये नियम प्रशासन में बड़े महत्वपूर्ण परिवर्तन करते हैं। कानून बनाते समय अथवा विधायिका की चर्चा एवं वाद–विवाद के वक्त प्रस्तावित सुधारों को व्यापक जन–प्रचार मिलता है। विधायन की अवस्था अनेकानेक फोरमों, मसलन समितियों, आयोगों और प्रेस के सहारे सलाह–मशविरा करके तथा उनके साथ बैठक करके आगे बढ़ती है।

प्रवृत्तिगत परिवर्तनों के सहारे किए जाने वाले सुधार उद्यम के मानवीय पक्षों के दोहन द्वारा संपन्न होते हैं। प्रशासनिक संगठन अनिवार्य रूप से मानवों द्वारा ही बने होते हैं। संरचना, कानून अथवा प्रावधानों में किए गए औपचारिक परिवर्तन तब तक इच्छित परिणाम नहीं उत्पन्न कर पाते जब तक इन परिवर्तनों को संगठन के सदस्य स्वीकार न कर लें और इनके गुणों की परख न कर लें। केडन के शब्दों में, "सुधारों का स्थायी होना शक्ति की वरीयता अथवा उसपर अविश्वास करने वालों के दमन पर निर्भर नहीं है। अन्ततः जो लोग इन सुधार का विरोध करते हैं उन्हें दिल और दिमाग से जीतना पड़ता है। उनकी प्रवृत्ति बदलनी चाहिए अन्यथा उन्हें बदल देना पड़ेगा।"[17]

प्रवृत्तिगत परिवर्तन ला पाना कोई आसान बात नहीं है। संभव है बाहर से परिवर्तन के लक्षण दिखाई पड़ते हों जबकि अंदर ही अंदर काम करने के पुराने तरीके अपना असर बनाये हुए हों। व्यवहारमूलक विज्ञान विभिन्न पद्धतियों पर शोधरत हैं ताकि सांगठनिक

संवृद्धि और व्यक्तिगत संतुष्टि के लिए प्रवृत्तिगत परिवर्तन लाये जा सकें। व्यवहार में परिवर्तन लाकर जो प्रशासनिक सुधार किए जाते हैं वे अनौपचारिक होते हैं और साथ ही निरन्तर जारी रहते हैं।

केडन ने सुधारों को क्रियान्वित करने की जो पद्धतियां बतायी हैं वे वास्तव में सुधार के 'स्रोत' हैं। क्रांतिकारी परिवर्तन, नौकरशाही पर आधारित जागरूकता, वैधानिक हस्तक्षेप तथा प्रवृत्तिगत रूपान्तरण दरअसल प्रशासनिक सुधार की त्वरा जगाते हैं। क्रियान्वयन अपने निजी रूप में बड़ा झंझट भरा भौतिक काम है जिसमें सुधार–विशेष के प्रस्ताव को वास्तविक रूप में लागू करने के लिए सांगठनिक व्यवस्था करनी पड़ती है। उदाहरण के लिए प्रशासनिक सुधार विभाग (बाद में कार्मिक एवं प्रशासनिक सुधार विभाग कहा गया) भारत सरकार के अंतर्गत सुधार प्रस्तावों के क्रियान्वयन की देखरेख करने वाला और उन्हें तय करने वाला शीर्ष विभाग बन गया है। ये सुधार–प्रस्ताव प्रशासनिक सुधार आयोग के विविध प्रतिवेदनों पर आधारित होते हैं। सामान्यतः किसी समिति की सिफारिशों को सुधार का व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करने का दायित्व किसी छोटी समिति अथवा कुछ वरिष्ठ अधिकारियों को सौंपा जाता है। विभाग/संस्था का अध्यक्ष इस बात की देखभाल करता है कि उसके संगठन से संबद्ध सुधार–प्रस्ताव वास्तव में अमल में लाये जा रहे हैं और उनका क्रियान्वयन एक निश्चित समय–सीमा के अनुसार किया जा रहा है। जब सुधारों के कारण नये पदों के सृजन की जरूरत होती है अथवा नयी सामग्रियों एवं उपकरणों के उपार्जन की आवश्यकता पैदा हो जाती है तब इसके अनुसार बजट का समायोजन किया जाता है' समुचित प्राधिकरणों से अनुमति प्राप्त करनी होती है तथा निविदाओं और अनुबंधों को समयानुसार तय करना पड़ता है। इस प्रकार क्रियान्वयन का अर्थ हो जाता है प्रस्ताव विशेष को अभियान मानकर संचालित करना तथा एक निश्चित समय के अन्दर इनका प्रवर्तन करके इन्हें प्रभावी बनाना। अनुभवों से ज्ञात होता है कि सुधार–प्रस्ताव अक्सर फाईलों और अलमारियों में दबकर रह जाते हैं और उनपर ध्यान नहीं दिया जाता तथा उनका अवलोकन नहीं होता। शीर्षस्थ नौकरशाही के हितों को जिन सुधारों से चोट पहुंचती है उन्हें भुला देना लाजिमी है तथा जिन सुधारों से उन्हें लाभ होता है उसे वे सही त्वरा के साथ लागू करते हैं।

### मूल्यांकन

जब सुधार स्वीकार कर लिए जायें तथा उनका क्रियान्वयन हो जाय तो उनका मूल्यांकन करना चाहिए और निदेशन भी। क्रियान्वयन के दौरान बहुत सी कठिनाइयां और समस्याएं पैदा होती हैं। संगठन को इन दुष्क्रियाओं से निपटने के लिए तैयार रहना चाहिए तथा मूल लक्ष्य का समायोजन करते रहना चाहिए। इसके लिए जरूरी है क्रियान्वयन की प्रक्रिया को चरणबद्ध ढंग से करना। हर चरण में अपेक्षित परिणाम को पूर्वनिर्धारित कर लेना पड़ता है तथा जैसे–जैसे क्रियान्वयन की प्रक्रिया आगे बढ़ती है प्राप्त वास्तविक परिणाम से अपेक्षित परिणाम की तुलना कर लेनी पड़ती है।

मूल्यांकन का संबंध क्रियान्वयन के अंतिम परिणाम की परीक्षा से है। सुधार के उद्देश्य जिस रूप में सोचे गए हैं, उसी रूप में उनको साकार और मूर्त रूप में घटित करना पड़ता है। जहां तक संभव हो अपेक्षित परिणाम प्राप्त करना होता है। उदाहरण के लिए, वातावरण पर आधारित मानकों के विकास के मूल प्रस्ताव को मूल्यांकन के लिए ज्यादा से ज्यादा विशिष्ट बनाना पड़ता है। वातावरण के प्रदूषण में कमी लाने के कितने प्रयास किए गए? कितने खुले स्थान तथा उद्यान बनाए गए अथवा उनका पुनरूद्धार किया गया? कितने वृक्ष लगाए गए? वाहनों पर किस तरह के अंकुश लगाए गए? ये तथा कुछ ऐसे ही अन्य प्रश्न उठाए जाने चाहिए तथा वातावरण से संबंधित मानकों के सुधार की अवधारणा को संचालित किया जा सके। इस विशेषीकरण के बगैर वातावरण में सुधार लाने हेतु किए गए किसी भी सांगठनिक अथा कार्यप्रणालीगत परिवर्तन का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता।

यह बात सच है कि प्रशासनिक सुधारों के मूल्यांकन की जो पद्धतियां है उनमें कई प्रविधिगत कठिनाइयां दृष्टिगोचर होती हैं। अगर इस दृष्टिकोण से सफलता को मापा जाता है कि अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में सुधारों का क्या योगदान रहा तो यह प्रशासनिक कार्यसंपादन के मूल्यांकन के लिहाज से भ्रम भी साबित हो सकता है।

यही नहीं, यदि प्रयासों का परिणाम निर्धारित मानकों से मेल खाता है तब भी संभव है कि इसका सामाजिक सक्षमता अथवा लोकहित में कोई योगदान न हो। सुधारों का अंतिम परिणाम मात्र क्रियान्वयन पर ही निर्भर नहीं करता। सरकारी अभियान शायद ही कभी किसी एक संस्था के संचालित किए जाते हैं। वातावरण से पारस्परिक संपर्क (ग्राहकों, राजनेताओं, व्यवसाय इत्यादि) तथा सहयोगी संस्थाओं को अलग–अलग करके देखना आसान नहीं होता। इन्हें किसी संस्था–विशेष के सुधार–कार्यों से अलग करना मुश्किल है।

इनके अलावा, सुधारों का मूल्यांकन स्वयं सुधार–प्रक्रिया का ही एक अविभाज्य अंग होना चाहिए। निस्संन्देह ये समस्याएं मौलिक हैं तथा इनसे बचने के लिए मूल्यांकन की ज्यादा कठोर पद्धति अपनाने की जरूरत है। जब तक वस्तुनिष्ठ रूप में यह साबित न हो जाय कि सुधार के जरिए निश्चित रूप से विकास होगा तथा सुधारों के द्वारा कुछ ठोस परिणाम सामने आएंगे तब तक और सुधारों को प्रस्तावित करना और उन्हें लागू करना मुश्किल होता है।

## सारांश

सारांशस्वरूप कहा जा सकता है कि लोकप्रशासन के अंतर्गत प्रशासनिक सुधार एक महत्वपूर्ण सवाल है। इसकी जरूरत व्यापक तौर पर महसूस की जाती है तथा इसके प्रतिदर्शों पर फिलहाल पर्याप्त ध्यान दिया जा रहा है। सुधारों से अनेक उद्देश्यों की पूर्ति होती है तथा सुधारों के अनेक प्रकार होते हैं। सुधार प्रस्तावों को विशिष्ट चरणों से गुजरना पड़ता है। सुधारों की सफलता नेतृत्व, सही निदान तथा परिस्थिति की सही पकड़,

सावधानी पूर्ण नियोजन तथा प्रस्ताव को विशेष–विशेष खंडों में बांटने पर निर्भर करती है। इसकी सफलता के लिए जरूरी है सही समय की पहचान, संसाधनों पर नियंत्रण तथा सबसे बढ़कर 'राजनीति' की समझ। सुधारों के क्रियान्वयन की योजना ध्यानपूर्वक बनानी पड़ती है जिसमें निर्देशन और नियंत्रण क्रियान्वयन का अविभाज्य अंग होना चाहिए। यह बात स्पष्ट तौर पर साबित होनी चाहिए कि सुधारों से अपेक्षित परिणाम हासिल होंगे। इसलिए मूल्यांकन, सुधारों का अनिवार्य अंग है।

## References

1. Frederick C. Mosher (ed.), *Government Reorganisations : Cases and Controversy,* Bobbs-Merrill, N. Y., 1967, p. 497.
2. Paul H. Appleby, "The Significance of the Hoover Commission Report", *The Yale Review,* 39 (1) : 2-22, September 1949.
3. Gerald E. Caiden, *Administrative Reform,* The Penguin Press, London, 1970, p. 65.
4. Fred W. Riggs, "Introduction", *in Frontiers of Development Administration* (edited), Duke University Press, Durham, N. C., 1971.
5. Caiden opts for systems approach, imagining that the process approach is narrow in scope. The process approach need not be narrowly conceived and can be quite comprehensive.
6. J. D. Montgomery, "Sources of Bureaucratic Reform : Typology Purpose and Politics;" in Ralph Braibanti (ed.), *Political and Administrative Development,* Duke University Press, 1969.
7. Norton Long, "Power and Administration", *Public Administration Review,* IX, No. 4, Autumn 1949.
8. For a discussion on the distinction between instrumental organisations and societal institutions, see Philip Selznick, *Leadership in Administration,* Row, Peterson & Co., Evanston, III, 1957.
9. Wesley E. Bjur and Gerald E. Caiden, "Administrative Reform and Institutional Bureaucracies", *Dynamics of Development,* edited by Sudesh K. Sharma, Concept Publishing Co., Delhi, Vol. I, 1977.
10. Op. cit., pp. 470-471.
11. Wesley E. Bjur and Gerald E. Caiden, op. cit.